P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-4* December- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कल्प का अर्थ विकास एवं व्युत्पत्ति

Meaning and Development of Kalpa

Paper Submission: 15/12/2020, Date of Acceptance: 26/12/2020, Date of Publication: 27/12/2020

ध्यानेन्द्र नारायण दूबे
सहयुक्त आचार्य,
प्राचीन इतिहास विभाग,
डी. डी. यू. गोरखपुर
विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, उ०प्र०, भारत

सारांश

सामान्यता कल्प शब्द एक विशिष्ट शास्त्र के रूप में प्रयुक्त होता है जबकि ऋग्वैदिक काल से लेकर पौराणिक संदर्भों में इसके अर्थ बदलते हुए दिखाई पड़ते हैं कल्प का उल्लेख साहित्य में सर्वप्रथम ऋग्वेद के दशम मंडल में मिलता है जहां 13 बार कल्प का प्रयोग किया गया है वहां उसका अर्थ वरण करने के संदर्भ में है। अथर्ववेद में शास्त्र, विषय के संदर्भ में और अन्य अवांतर कालीन शास्त्रों में कर्मकांड, प्रस्ताव, कर, विधि, काल, विकल्प एवं अन्य संदर्भ में प्राप्त होता है वस्तुतः कल्पसूत्र पुराणों के समय तक आते–आते इतिहास की तरह उसका भी समाहार पुराणों में हो गया

Normally the word Kalpa is appropriate as a specific scripture, while its meaning in the mythological contexts from the Rig Vedic period appears to be changing, Kalpa is first mentioned in literature in the tenth ground of the Rigveda where Kalpa has been used 13 times. Its meaning is in the context of selection. In the Atharvaveda, in the context of the scriptures, the subject and in other later scriptures, by offering rituals, it is obtained in the context of the legal period and in other context, in fact, like the history of the Kalpasutra Puranas, it also became like the history in the Sahran Puranas.

मुख्य शब्द : ब्रह्मराण्यक, अपौरूषेय, पौरूषेय, कल्पस्व, कल्पेषु, कल्पजोक्ति।
Brahmarayaka, Appauruseya, Pourusheya, Kalpasva, Kalpeshu, Kalpajokti.

प्रस्तावना

कल्प शब्द का एक विशिष्ट शास्त्र के अर्थ में प्रयोग कल्प–वाङ्मय के व्यवस्थित अथवा सूत्रबद्ध हो जाने के पश्चात् ही हुआ और तब इसका एक विशिष्ट अर्थ इस प्रसंग में रूढ़ होता गया। ध्यातव्य है कि मंत्र–संहिताएं और ब्राह्मणारण्यक अपौरूषेय है तो कल्प–वाङ्मय पौरूषेय, भले ही दोनों प्रकार के साहित्य की प्रकृति धार्मिक है।[1] वास्तव में इस शब्द के मूलार्थ – प्रकाश के निमित्त इस पद के प्राचीनतम प्रयोगों पर विचार करना अपेक्षित होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शास्त्र विशेष के अभिप्राय से कल्प शब्द का प्रयोग प्रथमतः अथर्ववेदीय वाङ्मय से होने लगा।[2]

कल्प : ऋग्वेदीय अवधारणा

कल्प शब्द की कल्पना ऋग्वेदीय ऋषियों की है। ऋग्वेद में कल्प शब्द कम से कम तेरह बार प्रयोग हुए हैं, अधिकांशतः ऋग्वेदीय दशम् मण्डल में।[3] इन (ऋग्वेदीय) मंत्रो मे कल्पयाति, कल्पयस्व, कल्पय, कल्पययतु, कल्पयन्ति, कल्पस्व जैसे प्रयोग मिलते है, एक स्थान पर ''कल्प'' शब्द प्रयुक्त है तो अन्यत्र ''कल्पेषु''। वेंङकट स्वामी और सायणाचार्य ने यहाँ प्रयुक्त कल्प शब्द का अर्थ किया है ''वरण करना'' अथवा ''समर्थन करना'' इन टीकाकारो की कल्प सम्बन्धी दृष्टि में भी किंचित अन्तर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद मे एक स्थान (10.18.5) पर ''कल्पयैषाम्'' प्रयुक्त है वेङ्कटस्वामी ने इसमें ''कल्पय'' की टीका 'कल्पना' के अर्थ में की है जबकि उद्गीथ की इस पर टीका है ''समर्थय'' अथवा ''कुरू''। इसमे सन्देह नहीं कि ऋग्वेदीय वाङ्मय के अन्तिम स्तर मे ''कल्प'' शब्द प्रयुक्त हुए हैं, यह बात अलग है कि वहाँ यह पद शास्त्रार्थक भाव मे प्रयुक्त न हुआ हो इसमे भी सन्देह नही कि वैदिक वाङ्मय की परम्परा में आश्वलायन और शांखायन जैसे अत्यन्त प्रतिष्ठित सूत्रकार हुए जिनकी अपनी कल्प–परम्परा का विशेष महत्व है इसमे आश्वलायन संज्ञक ऋषि प्रश्न उपनिषद[4] के अनुसार महर्षि पिप्पलाद के आश्रम मे छः विशिष्ट जिज्ञासु प्रश्न–कर्ताओ में से एक रहे है, उन्हें कौशल्य आश्वलायन कहा गया है। इस तरह उत्तर वैदिक काल मे कल्प की अवधारणा विकसित हो चुकी होगी, ऐसा कहा जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

कल्प के शब्द के मूल अर्थ एवं अभिप्राय की वास्तविक रूप को स्पष्ट करना क्योंकि ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक इसके अर्थ भिन्न–भिन्न मिलते हैं। कहीं व्यवहारिक पक्ष से तो कहीं शास्त्र से तो कहीं समय और विकल्प से। सायण भाष्य है तथा वैदिक कर्मकांड और पौराणिक संदर्भों को दृष्टिगत रखते हुए इसके मूल अभिप्राय को व्यक्त किया गया है।

साहित्यावलोकन

मैक्स मूलर ने हिस्ट्री ऑफ एशियन संस्कृत लिटरेचर, भागवत दत्त ने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पी. वी. काणे ने धर्म शास्त्रों का इतिहास, भाग–1 ए, ए.वी. कीथ जी ने वैदिक ब्राह्मणाज, डॉक्टर रामगोपाल जी इंडिया ऑफ वैदिक कल्पसूत्राज आर0एन0 दांडेकर ने लिटरेचर ऑफ ब्राह्मण निज्म इन संस्कृत कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया आचार्य बलदेव उपाध्याय ने पुराण विमर्श में कला के स्वरूप अर्थ और कल्प सूत्रों की विशद चर्चा की है लेकिन वह वैदिक कर्मकांड के स्रोत के रूप इसको देखा गया है। इस शोध लेख के द्वारा कल्प के बदलते अर्थ और उसकी परंपरा तथा कर्मकांड के पौराणिक समाहार को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

'कल्प' की व्युत्पत्ति व अर्थ–विकास

कल्प शब्द की व्युत्पत्ति हुई है – क्लृप् धातु से जिसका अर्थ है व्यवस्थित करना, सम्पन्न करना अथवा ''करना'' कुछ विद्वानो ने कल्प की ब्युत्पत्ति सामार्थ्यक कृप धातु से स्वीकार की है।[5] विरूद्धलक्षण के द्वारा असामर्थ्यर्थक भी है यह धातु– ''कल्पते समर्थो भवति स्वकृयायै विरूद्धलक्षण्यासामर्थ्ये विरूद्धलक्षणयाअसामर्थ्ये वा असमर्थो भवतिवाङत्र, कृप् आधारे घ कल्पयति'' सृष्टिं विनाशंवा त्र। कृप् णिच् आधारे अच्''। इस प्रकार कल्प शब्द सृष्टि अथवा विनाश की अभिव्यक्ति भी करता है। 'कृप् घ' या 'कृप् णिच् अच्' से व्युत्पन्न कल्प का सामान्य अर्थ है। व्यवहार में लाने योग्य, सशक्त अथवा संभव।[6]

कल्प की व्युत्पत्ति वस्तुतः कृप् से न होकर क्लृप् से हुई है, इस धातु के समकक्ष एक भायोरोपीय धातुज्ञात है ''क्लेप्''। इस तरह क्लेप्–क्लृप की परम्परा पुरानी है और तब कल्प का मूलार्थ भी प्राचीनतर होना चाहिए। अवेस्ता के प्रचीनतम भाग ''यस्न'' 48.10 में एवं अन्यत्र एक शब्द ज्ञात होता है ''करपन'' जो वस्तुतः कल्पिन (कल्पी) का रूपान्तर प्रतीत होता है। 'करपन' अवेस्ता के अनुसार ''हओम'' (सोम) के ''कर्म'' से सम्बद्ध रहा है। अस्तु इस दृष्टि से ''करपन'' के कर्मकाण्ड को अवेस्ता में भले ही कर्प (कल्प) न कहा गया हो, वह भारत–ईरानी–परम्परा की इसी क्रिया को लक्षित करता है।

''कल्प'' की अर्थवत्ता सामान्यतः जिस तरह व्यक्त की जाती रही है तद्नुसार ही इसका अर्थ–विकास प्रतिविम्बित होता है। यह शब्द उचित, योग्य या सत्य के अर्थ को भी व्यक्त करता है और यथा प्रयुक्त समर्थ या सक्ष्मबोधक भी। उदाहरण के लिए ''स्वक्रियायामकल्पः'' (स्वक्रियायाम् अकल्पः) अपना कर्तव्य पूरा करने में असमर्थ। यहाँ अकल्प का अर्थ है असमर्थ तो कल्प का अर्थ हुआ समर्थ। कल्प का प्रमुख अर्थ है–

1. धार्मिक कर्तव्यों का विधि विधान, नियम, अध्यादेश।
2. विहित नियम, विहितविकल्प।[7] ''कल्प'' का एक अर्थ विकल्प भी है। ''प्रथमःकल्पः'' का अभिप्राय है बहुत अच्छा विकल्प।[8]
3. कल्प का तीसरा अर्थ है – प्रस्ताव, सुझाव, निश्चय अथवा संकल्प।
4. इस पदका एक अन्य अर्थ है कार्य–विधि। रघुवंश (1–94)में इसी अर्थ में कल्प प्रयुक्त है।[9]
5. सृष्टि के अन्त अथवा प्रलय को भी कल्प कहते हैं, तो इसका काल वाचक होना सुविख्यात है, हम अपने संकल्प में अपने युग–परिचय में कहते हैं–''श्री श्वेतवाराह कल्पे.....'' इत्यादि। कल्प–कल्पान्तर कहते ही कल्प का काल–बोधक अर्थ उजागर हो जाता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने पुराणों मे बहुप्रयुक्त कल्पजोक्ति, कल्पशुद्धि और कल्प जैसे तीन समानार्थक शब्दो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा है कि इनमें कल्पजोक्तिका व्युत्पत्यर्थ है– भिन्न भिन्न कल्पों (समय विशेष) में उत्पन्न होने वाले विषयों या पदार्थो का कथन अथवा विवरण।[10] स्पष्ट है कि पौराणिक ''कल्प'' वेदांग ''कल्प'' के मूल अर्थ से भिन्न अर्थ रखता था। तात्पर्य यह है कि पुराणो में अभिव्यक्ति कल्प का अर्थ इस शब्द के प्राथमिक अर्थ से भिन्न हुआ। यद्यपि पुराणो के प्रसिद्ध व्यवख्याकार श्रीधरस्वामी ने ''कल्प'' और ''श्राद्धकल्प'' में एकता स्थापित करने की चेष्टा की है।[11] वस्तुतः पौराणिकों का कल्प सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक होता गया, कुछ विद्वानो के अनुसार ''कल्प'' द्वारा पौराणिकों का मंतव्य धर्मशास्त्र के समग्र विषय से है।[12]

कल्प शब्द का कालवाचक अभिप्राय वस्तुतः पौराणिक प्रतीक होता है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अध्येता पार्जीटर ने कल्प शब्द के सामान्य अर्थ समय–चक्र पर बल दिया है। इनके विचार से इस शब्दका तात्पर्य प्राचीनतम कथा और प्राचीन कथाओं के ज्ञाता से लिया जा सकता है। पार्जीटर के इस विचार का आधार था पुराणों में ''पुराकल्प'', पुरातनकल्प'' और ''पुराकल्पविद्'' जैसे शब्दों का व्यवहार।[13] ''पुराण–विमर्श'' के ही प्रसंग में आचार्यबलदेव उपाध्याय की धारणा है कि ''पौराणिक कल्प और कल्पजीक्ति वस्तुतः एक ही तात्पर्य के बोधक है, अथवा 'कल्प' कल्पजोक्ति का संक्षिप्त रूप है, अतएव दोनों शब्दों से पौराणिक स्थलोंकी प्राचीनता का बोध होता है।[14] हमारी दृटि में कल्पजोक्ति शब्द,सम्भव है कि पुराणों में ''कल्प–सूत्र'' अर्थ को ध्वनित करता हो,कल्प–सूत्र का तात्पर्य भले ही यहां वेदांग–कल्प से न तो (ऐसा प्रासंकिग भी न था) तथापि पुराणों में ''इतिहास'' के समान ''कल्प'' का समाहार एक स्वाभाविक प्रक्रिया की बात हो सकती है।

''कल्प'' : एक शास्त्र

कल्प एक वेदांग है अस्तु शास्त्र अर्थ में इसका प्रयोग रूढ़ है और यही शास्त्र : कल्प–वाङगमय हमारा प्रतिपाध है। शास्त्र क्यों? इसका उत्तर निहित है शास्त्र

के मूलार्थ में। शास्त्र शब्द की व्युत्पत्ति आगम–ग्रन्थों में इस प्रकार बतलाई गई है।

शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्यभिधीयते।
शासनं द्विविधं प्रेक्तं शास्त्रलक्षणेदिभिः।
शांसनं भतवस्त्वेकविषयं न क्रियापरम्।

''शास्त्र'' की व्यत्पत्ति दो धातुओं से है– शास् त्र आज्ञा करना तथा शंस् त्र प्रकट करना या वर्णन करना। शासन करने वाले विधिरूप तथा निषेधरूप होनेसे दो प्रकार के होते है। श्रुति तथा स्मृति प्रतिपादित कार्य अनुष्ठान करने योग्य है। (विधि) तथा निन्दित कर्म–कलाप सर्वथा हेये है। (निषेध)। अतः ''शासन'' अर्थ में ''शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र के लिये उपयुक्त है। ''शंसक'' शास्त्र अथवा बोधक – शास्त्र वह है जिसके द्वारा वस्तु के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया जाय। शासन–शास्त्र क्रिया–परक होता है, पर शंसक–शास्त्र ज्ञान–परक होता है।15 अर्थात् जो परामर्शात्क अथवा आदेशात्मक हो, वह शास्त्र है।सूत्र–वाङ्मय के लिये प्रयुक्त ''कल्प'' शब्द में यही अर्थ ध्वनित होता है तद्नुसार कल्प एक तरफ शंसन (सत्य–कथन),करतेहैं तो दूसरी तरफ शासन (कर्मकाण्डीय प्रसंगमें अनुशासन) भी। इस प्रकार ये कल्प ''शास्त्र'' है। रोचक बात यह है छठवीं शताब्दी ई0पूर्व0 के आस–पास, सूत्र–शैली में इस तरह के शास्त्रों की अवतारणा प्रारम्भ होती है और कर्मकाण्डीय ही नहीं दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेद, काम, संगीत आदि क्षेत्रों के लिये इस तरह के जो शास्त्र रचे जाने लगे, उनमें वैज्ञानिक विश्लेषणात्मकता के साथ विषय को व्यवस्थित करने के लिए नियमों का निर्माण भी हुआ। कहने की आचश्यकतानहीं कि सूत्र–शैली में उपनिबद्ध ऐसे शास्त्र बड़े ही महत्व के सिद्ध हुए। क्ल्प–वाङ्मय इनमें विशिष्ट इसलिए भी है क्योंकि एक तो इनका प्रतिपाद्य मंत्र–संहिताओ, ब्राह्मण और आरण्यकों के वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ ''कर्म'' के लिए विधि–विधान प्रस्तुत करना था, दूसरे अधिकांश कल्प–वाङ्मय आज उपलब्ध है अस्तु एक परम्परा और एक युग की प्रवृत्ति का ये बोध कराते हैं। एक बात और, कल्प वेदों की तरह अपौरूषेय न होकर मानवकृत हैं।[16] अस्तु इनका महत्व ऐतिहासिक दृष्टिसे बढ़ जाता है प्रायः बौद्धकालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में।

कल्पसूत्र : एक वेदांग

वेदों के जो षडंग हैं उनके प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य17 में लिखा है– ''रक्षार्थ वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमर्ण विकारज्ञौ हि वेदान् परिपालयिष्यति।।'' तात्पर्य यह कि वेदांगों का प्रयोजन वेदों के स्वरूप–निर्धारण व उनके अर्थ–संरक्षण के निमित्त हुआ था। रोचक बात यह है कि महर्षि पाणिनि का वेदांगों के विषय में एक बड़ा ही महत्वपूर्ण वचन उपलब्ध है। यह महर्षि पाणिनि ने वेद को पुरूष और वेदांकों को परम पुरूष के अंगों के रूपक में प्रस्तुत किया है तद्नुसार कल्प वेद रूपी पुरूष के हस्तयुगल है।18 निश्चय ही इन षडंगों का वेदों से बड़ा गहरा सम्बन्ध है अस्तु इन्हें वेदांग कहकर इन्हें वेद का पूरक कहा जाना सर्वथा प्रासंगिक प्रतीत होता है। वेद शब्द का अर्थ अत्यंत व्यापक है। संहिताओं के मंत्रों, विभिन्न ब्राह्मणो तथा आयुर्वेद व नाट्यशास्त्र आदि में विद् धातु से निष्पन्न वेद शब्द की व्यापक अर्थवत्ता की गई है।[19] कल्प सूत्रों ने वेद शब्द को इसी व्यापक अर्थ के साथ विशिष्ट अभिप्राय को व्यक्त करते स्वीकार किया है। हिरण्यकेशीय श्रौत सूत्र और आस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि प्रत्यक्ष आदि ने न सिद्ध होने वाले परन्तु शब्द–प्रमाण से विहित कर्मों अर्थात् उपदेश की समाप्ति जितने ग्रंथों में होती है उनके लिए वेद शब्द प्रयुक्त होता है।[20] वेदांग एक समस्त पद है, यह शब्द स्वयमेव इस बात को चरितार्थ करता है क्योंकि अंग शब्द का अभिधार्थ है उपकारक – ''अंगयन्ते ज्ञायन्ते एभिरित्यंगानि'' अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता मिले उन्हें अंग कहा जाता है। इस तरह अंग उपकाकरक या सहायक सिद्ध होते हैं। वेदों के षड्विध अंग हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्यातिष–

शिक्षा व्याकरणं छन्दौ निरूक्तं ज्योतिषस्तथा।
कल्पश्चेति षहंगानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

इन छः वेदांगों का निर्देश विभिन्न कालों में यथा प्रसंग किया जाता रहा है। प्रारम्भिक उपनिषदों में से एक है मुण्डक उपनिषद्, जहाँ अक्षर ब्रह्म की मीमांसा मे चारों वेदों और उनके षडंगों के नाम यथा क्रम मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इसी उपनिषद् में द्विविध विद्या–''परा'' एवं ''अपरा'' की बात की गयी है। उपनिषदों को अक्षर ब्रह्म ''परा'' विद्या और वेद –वेदांगों को ''अपरा'' संज्ञा दी गयी है।[20] पूर्वोक्त पाणिनीय रूपक का हम पुनः स्मरण करें तो कह सकते हैं कि पाणिनि के समय तक वेदांगों की प्रतिष्ठा विधिवत हो चुकी थी क्योंकि पाणिनि ने इनअंगों की अद्भुत कल्पना की है। उनके अनुसार छन्द वेदों के चरण हैं और कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र हैं और निरूक्त श्रोत्र (कान), शिक्षा घ्राण अर्थात् नाक है तो व्याकरण हैं वेद का मुख। इस तरह वेदों के साथ वेदांगों का अध्ययन करके ही ब्रह्म–लोक की प्राप्ति की जा सकती है।[21] पाणिनीय रूपक का उक्त प्रसंग नया नहीं है। क्योंकि षड्विंश ब्राह्मण में चारों वेदों को ''स्वाहा'' का शरीर और छः वेदांगों को उसका अवयव कहा गया है।[21]

क्या कल्प आर्ष हैं ?

कल्प–वाङ्मय क्या ऋषि प्रोक्त हैं? – यह प्रश्न एक और प्रश्न का सृजन करता है कि यदि वे ऋषि–प्रोक्त नही तो फिर उनके प्रणेताओं को क्या कहें? संभवतः आचार्य। इस उत्तर से तो ऋषि व आचर्य के मौलिक भेद को समझना अपरिहार्य होगा। कल्पसूत्रों को ऋग्वेदादि संहिताओं व ब्राह्मणाख्याकोपनिषदों की भांति अपौरूषेय समझने वाले ही सम्भवतः षि व आचार्य[22] में विभेद करते हैं यों ''ऋषिदर्शनात्'' के अनुसार ऋषि रहे हैं द्रष्टा विशेष, असाधारण दष्टि सम्पन्न और आचार्यगण लौकिक मतिमान। जो विद्वान कल्प के प्रेणताओं को पौरूषेय मानते रहे है। उनकी दृष्टि में आश्वलायन, आपस्तंब, बौधायन प्रभृति उसी प्रकार आचार्य रहे हैं यथा पाणिनि और पतंजलि, मनु, याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकार भी इसी श्रेणी के कहे जा सकते हैं। ऋषि यदि रहा है द्रष्टा–चिन्तन–मननकर्ता तो आचार्य रहा है– व्याख्याता लेकिन पूर्वाचार्यों के विचारों की चर्चा व उसकी व्याख्या करने वाले ये कृती निश्चय ही एक साथ षि व आचार्य दोनों ही कहे जा सकते हैं। यह प्रवृत्ति वस्तृतः वैदिक

संहिताओं तक में भी यत्र–तत्र, अनेकत्र दीख पड़ती हैं अस्तु यह निश्चय कर लेना कि कल्प वाङमय आर्ष है और वे ऋषि अलौकिक मानव थे, भारी भूल होगी। हमारे विचार से कल्प–वाङ्मय उसी प्रकार विशिष्ट प्रजा–पुत्रों की देन है जिस तरह व्याकरण, दर्शन आदि, के मूल उद्गाताओं–सूत्रकारों की पहचान की जाती है। उन्हें ऋषि–महर्षि अथवा आचार्य, प्रवचनकर्ता[23] कभी–कभी भगवान विशेषण देना उनकी महिमा को रेखांकित करना है तथापि कल्प के मूल प्रेणताओं के प्रसंग में किंचित् विमर्श कर लेना अप्रासंगिक न होगा। सामान्यतः यही स्वीकार किया जाता है कि सूत्र वाङ्मय आर्ष है अर्थात् ऋषि–प्रणोत है। सर्व प्रथम महर्षि पाणिनिका इस प्रसंग में उल्लेख किया जा सकता है जिन्होने ''णिनि'' प्रत्यय के विमर्श में, प्रकारान्तर से, उक्त दृष्टिकोण का संकेत दिया। उन्होंने लिखा है–

पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु।
काश्यपकौशिकभ्यामृषिभ्यां णिनिः।[24]

इस तरह पाणिनि की दृष्टि में कल्प–सूत्र आर्ष है। बाद में पतंजलि ने भी, एक अन्य संदर्भ में, किसी कल्प–ग्रंन्थ के सूत्र–वचन ''यवमतीभिः'' का उल्लेख करते उसे स्पष्टः ऋषि–वचन कहा है। ज्ञातव्य है कि पतंजलि के ''यवमतिभिरद्भि यृयं प्रोक्षति''[25] की तुलना आश्वलासनगृहम् सूत्र (1.9.30) ''यवभतीभिरद्भिः पुरस्तात् प्रोक्षति'' से की जा सकती है। भगवदत्त का कहना है कि जब यह (यवमतीभिः) ऋषिवचन है और किसी कल्प का सूत्र है तो वह कल्प अवश्य ऋषि–प्रणीत होगा।[26] स्वामी शंकराचार्य के पूर्ववर्ती और प्रसिद्ध मी मांसक कुमारिल भट्ट (लगभग 700 ई0) के प्रसिद्ध ग्रंथ ''तन्त्र वार्तिक'' काव एक अधिकरण ही ''कल्पसूत्राधिकारण'' कहलाता है। इस अधिकरण में कुमारिल का कल्प के सम्बन्ध में वही अभिमत है कि कल्पसूत्र षिप्रोक्त है। भगवद्दत्त का कहना है कि ''षिकाल क लिसंवत् के 450 वर्ष तक ही रहा है अतः यह कल्प और ऋषि प्रणीत कल्प उस काल के या उससे भी पहले के हैं ..... पाणिनि, पंतजलि और कुमारिल के सम्मुख योरोपीय पक्ष हेय हैं।[27]'' भगवद्दत्त का निष्कर्ष यह है कि प्राचीन और उनकी अपेक्षा कुछ नवीन–दोनों ही प्रकार के कल्पसूत्र पाणिनि से पहले बन चुके थे बल्कि बुद्ध–काल से बहुत पहले बन चुके थे। काणे, कैक्डॉनल एवं कीथ आदि भारतीय व विदेशी विद्वानों के इस मत से कि कल्पसूत्र आवश्वलायन आदि आचार्यों द्वारा प्रणीत है और उनकी रचना सामान्यतः 600–300 ई0 पू0 के बीच हुई है,[28] की तीब्र आलोचना करते हुए भगवद्दत्त कहते हैं –

''वेदों की समस्त शाखाएं आर्षकाल की ही उपज है, अनेक अवस्थाओं में जिन–जिन ऋषिया ं ने संहिता और ब्राह्मणों का प्रवचन किया था, उन्हीं ऋषियों ने अपने कल्पसूत्र भी बना दिये थे। पैंगि ब्राह्मण और पैंगिकल्प का रचयिता एक ही ऋषि है, इस प्रकार चरक संहिता पचरक ब्राह्मण और चरक कल्प का प्रवक्ता भी एक ही है। शाट्यायन आदि के ग्रंथ भी इसी कोटि के हैं। शाखा–मणना में अनेक सौत्र शाखाएँ भी गिनी जाती है। यह सब वाङमय आर्षकाल का ही प्रवचन है। अतः इसका काल बुद्ध से सहस्रों वर्ष का है।''

ज्ञातव्य है कि वैदिक कर्मकाण्ड के प्रथम विख्यात व्याख्याता बोधायन प्रवचनकार कहे गये। डॉ0 बूहलर ने प्रवचनकार शब्द के अर्थ पर विचार करते हुए कहा है कि यदि एक आचार्य किसी शाखा का प्रवचनकार कहा गया तो इसका यह मतलब हुआ कि वह सक सामान्य सूत्रकार की अपेक्षा कुछ और है।[29] डॉ0 कलन्द भी इसी विचार के हैं[30], डॉ0 राम गोपाल का कहना है कि बौधायन भी कृतियाँ एक प्रवचन हैं न कि एक सूत्र। इनका कहना है कि इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि बौधा0गृ0सू0 एवं गौधा0, ध0सू0 दोनों प्रख्यात प्रवचनकार बोधायन द्वारा प्रणीत हैं और बौधायन सम्भवतः वैदिक कल्प के प्रथम प्रवचनकर्ता रहे हैं।[31] रोचक बात यह है कि बौधायन धर्मसूत्र में एक उक्ति है–

''भगवान बौधायनः''[32]

उपर्युक्त विवेचन, परम्परा से प्राप्त कति–पय सन्दर्भों की पृष्ठभूमि में, कल्प वाङमय का ं ऋषि–प्रौक्त सिद्ध करता है। यह वस्तुतः उसी प्रकार का भावोन्मेष है किस तरह वेदों के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते रहने की और उस पुरातन वाङमय को अनादि कालीन मानने की परम्परा रही है। कल्प वाङमय वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के विधि–विधान के लिए रचे गये हैं अतः वेद–सम्बद्ध होने के कारण उनके प्रति यह भावना स्वाभाविक भी है। विवेच्य प्रसंग में हमारा प्रतिपाद्य यह नहीं कि कल्प सूत्र अपौरूषेय हैं अथवा पौरूषेय, एक इति हासज्ञ की दृष्टि से विचार करने पर हम यह सोचने पर विवश है कि आश्वलायन आदि की परम्परा ऐतिहासिक महत्व रखती है– भाषा की दृष्टि से और संस्कृति की दृष्टि से भी।

जैसा कि हमने कल्प के अभिप्रय के प्रसंग में ''शास्त्र'' शब्द के विमर्श में कहा था कि वेदांगों का आविर्भाव वैदिक परम्परा के शास्त्रों के सूत्रपात एवं उनके नियमन के निमित्त–भूत एक नवीन युग लेकर आया। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक शास्त्र'' स्वतंत्र रूप से विकसित हुए और वेद–सम्बद्ध होने के कारण वे परम–पावन समझे गये। भाषा–शैली की दृष्टि से वेदों और वंदांग शास्त्रों में पर्याप्त दूरी है तथापि वे वेदों से सम्बद्ध हैं ही यद्यपि यह कहना कि वेदांग वेद से अभिन्न हैं न्यायोचित नहीं लगता। कल्प सूत्रों को विक्षेषकर वैदिक साहित्य से अभिन्न कह दिया जाता है कि त्रुटिपूर्ण है।अपने तंत्रवार्तिक में कुमारिल भट्ट ने लिखा है[33]–..... ''वेदत्वं कल्पसूत्राणांनो वक्तव्यंमनागपि''। मैक्समूलर का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि सूत्र सचमुच श्रुति के भाग नहीं है तथापि वे स्वाध्याय के अंग बन गये हैं[34]। दूसरी बात यह कि वेद अपौरूषेय हैं जब कि वे वेदांग पुरूषकृति[35]।

कल्पसूत्र : अभिप्राय एवं प्रयोजन

सूत्रबद्ध शैली में रचित होने के कारणव कल्प – वाङमय को प्रायः सूत्र–ग्रंथ कहा जाता है। सूत्र–शैली में यद्यपि कल्प ही नहीं, व्याकरण, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि तमाम अन्य विषय भी रचे गये तथापि सूत्र शब्द के उच्चारण मात्र से कल्प–सूत्र का बोध होने लगता है। कल्प शब्द की आर्थवत्ता पर हम विमर्श कर चुके हैं। जहाँ तक ''सूत्र'' शब्द के अभिप्राय का प्रश्न है, इस

सन्दर्भ में हम पुनः कह सकते हैं कि काव्य–मीमांसाकार राजशेखर[36] ने अपने सूत्र–वचन ''सूत्रणात् सूत्रम'' से सिद्ध किया है कि ''सूत्र'' शब्द ''सूत्र'' धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है बाँधना। अतिसंक्षिप्त पदावली के प्रयोग को सूत्र–भाषा अथवा भाषा की सूत्र शैली कहा जाता है। वायुपुराण में कहा गया है कि ''सूत्र'' मनीषियों के विचार से, अल्पाक्षर, असिन्दिग्ध, संक्षिप्त और हर दृष्टि से सारभूत विधा का नाम है। यह बात काव्य मीमांसा' में भी मिलती है।[37]

सूत्र वस्तुतः बहुत कम पदों में बहुत अधिक विचारों को भर देता है या कि जोड़ लेता है। तात्पर्य यह है कि कम से कम स्थान में अधिकतम् विचारों की अभिव्यक्ति कर देता है। राजशेखर द्वारा ''सूत्रणात्सूत्रम'' कहा जाना इसीलिए समीचीन है।

यह अत्यंत विख्यात ब्राह्मण उक्ति है व्याकरणविद् यदि आधी मात्रा भी बचा लेते हैं तो यह कार्य उनके लिए पुत्र–जन्मोत्सव से भी बढ़कर है– ''अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्तेवैयाकरणाः''[38]। सूत्र का यह स्वभाव उसकी शैली को ध्यान में रखते हुए अत्यनत महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। वास्तव में सूत्रकार के लिए यह आवश्यक था, साथ ही उसके लिए अपरिहार्य भी कि वह कम से कम अक्षरों में, एक विशेष पारिभाषिक पदावली में बड़ी से बड़ी बात कह दें। उपर्युक्त ब्राह्मण–उक्ति के सन्दर्भ में मैक्समूलर का कहना है कि इसे स्मरण रखना चाहिए कि ब्राह्मणों का यह विश्वास था कि एक पुत्र के बिना वे स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकते हैं क्योंकि पुत्र ही अन्त्येष्टि–क्रिया करता है। इन सूत्रों का उद्देश्य था कि समसत ज्ञान को एकत्रित किया जाय जो उस समय ब्राह्मणों के आश्रमों में और परिषदों में प्रचुर रूप से सुलभ था। उनमें बलि के नियम, उच्चारण सम्बन्धी लेख, शब्द–शास्त्र, व्याकरण, अलंकार और छन्द, नियम और परम्परायें, ज्योतिष और दर्शन–शास्त्र हैं।[39] कभी–कभी सूत्र एक लघुत्तम वाक्य बनाते हैं, यथा – 'एवमग्नीषीमीयम्[40] अथवा 'हरति द्यावा क्षामेति,[41] तो कभी–कभी दो–तीन अक्षरों में ही सूत्रबद्ध किये गये हैं यथा–यूपः[42]। ध्रुवः[43]। गृहेषु[44]। देशाः[45]। इत्यादि। लेकिन यह स्थिति आद्यन्त नहीं दिखाई देती, कभी–कभी तो सूत्र बहुत लम्बे खिंच गये हैं[46] और कभी–कभी वे एक बहुत लम्बे गद्यांश का रूप धारण कर लेते हैं।[47]

वास्तव में सूत्र केवल शास्त्र का नियमन ही नहीं करते अपितु वे विषय विश्लेषण के साथ नियमन करते हैं। इन शास्त्रों में ''तन्त्र–युक्ति'' होती थी। युक्ति का अर्थ होता है कि योजना अथवा बाँधना अर्थात् एक व्यवस्थित ढंग से विषको बाँध देना और तंत्र यहाँ पर मूलतः ''तन्तु'' वाचक है। सूत्र शब्द का अभिप्राय इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्योंकि सूत्र से विभिन्न धागों को एकीकृत करके व्यवस्थित कर देना होता है। जिस प्रकार कपड़े बनने में एक व्यवस्था, एकसूत्रबद्धता दिखाई देती है, मछली के जाल में जिस प्रकार यह व्यवस्था है तथैव सूत्र–भाषा में। ''तन्त्र–युक्ति'' का विकास सूत्र–शैली में हुआ, जिसके विषय काव्यात्मक नहीं शास्त्रीय होते थे। स्वाभाविक था कि इस प्रकार की पद्धति में भाषा गठी हुई नियंत्रित होती थी।[48]

ऋग्वेद प्रतिशाख्य की वर्णद्वय वृत्ति में विष्णु–मित्र ने कल्प का अर्थ किया है – वेद में विहित कर्मों की क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र, कल्पना शास्त्र –

''कल्पो वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पना शास्त्रम।[49]

कल्पसूत्रों के प्रयोजन पर भी मनीषियों ने बराबर विचार किया है।

इनमें तन्त्रावार्तिककार कुमारिल भट्ठ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिनके विचार से कल्प का महत्व वैदिक यज्ञानुष्ठान के लिए अपरिहार्य है। किं वा याज्ञिक कर्मकाण्डीलोग मंत्र–संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंन्थों की अपेक्षा किये बिना केवल कल्प की सहायता से यज्ञों का सम्पादन कर लेत हैं जबकि कल्पों के बिना अर्थात् वेद मात्र द्वासरा यज्ञानुष्ठान करना असम्भव है।[50] मैक्स म्यूलर ने कल्पसूत्रों के प्रयोजन पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि विशाल वैदिक साहित्य में विशेषकर ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ के अनुष्ठान एवं कर्मों का विधान इतना विस्तृत, जटिल, दुर्बोध एवं रहस्मय हो चुका था कि परवर्ती काल में उन्हें सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत करने की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। इस आवश्यकता के परिणाम स्वरूप इस युग में प्रचलित नवीन शैली ''सूत्र–शैली'' में जिन कर्मानुष्ठानपरक ग्रन्थों की रचना की गयी उन्हें कल्पसूत्र नाम से अभिहित किया गया।[51] कुमारिल भट्ठ ने अपने तन्त्रार्तिक में कल्पसूत्रों के प्रयोजन पर विचार करते हुए कहा था– ''कल्पसूत्रेष्वर्थवादादिमिश्रशखान्तरविप्र–कीर्णन्यायलभ्यि वध्युपसंहारफलमर्थनिरपणं तत्तत्प्रमाणमंगीकत्युकृतम। लोक व्यवहार पूर्वकाश के चिदृत्विगा दिव्यवहाराः सुखार्थहेतुत्वे नामिश्रताः[52]।।

निष्कर्ष

विवेच्य प्रसंग में सायणाचार्य की एक उक्ति उल्लेखनीय है जो उन्होंने कल्प वेदांग के उद्भव एवं प्रयोजन के विषय में बौधयन के एक सूत्र के भाष्य के रूप में प्रस्तुत किया था – ''तत्र तावद्विध्यर्थवादमन्त्रात्मना त्रिधाव्यवस्थितो वेदराशिः।'' विधि विहितमर्थवादप्ररोचितुं मन्त्रेण स्मृतमभुदयकारि भवतीति। तत्श्चचोदितानां कर्मणां सुखावबोधय भगवान बौधायनः कल्पमकल्पयत।।''[53] यहाँ यह ध्यातव्य है कि कल्पसूत्रों का मूल प्रतिपाद्य यद्यपि यज्ञानुष्ठानों का वर्णन है तथापि यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन यज्ञानुष्ठनों में अधिकांश का विवेचन ब्राह्मण ग्रंन्थों में हो चुका था लेकिन कल्पसूत्र यज्ञ–विधि का स्पष्ट और संक्षिप्त वर्णन करते हैं तथा उनकी प्रतिपादन शैली सुन्दर एवं विधि का स्पष्ट और संक्षिप्त वर्णन करते हैं तथा उनकी प्रतिपादन शैली सुन्दर एवं व्यवस्थित है। ध्यातव्य यह भी है कि ब्राह्मणों और सूत्रों की भाषा भिन्न है भले ही कल्प का विकास ब्राह्मण ग्रन्थों के गर्भ से माना जाता रहा हो।[54]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया (राम कृष्ण मिशन–प्रकाशन, कलकत्ता) भाग–5, आर0एन0 दाण्डेकर : लिटरेचर आफ ब्राह्मणिज्म इन संस्कृत पृ0 30

2 अथर्ववेद, 20.128.6–11, यहाँ निर्दिष्ट 6 मंत्रों को जनकल्प मंत्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो वस्तुतः ''जनों के लिए नियम व विधान'' के भाव व्यक्त करते हैं। जनकल्प की व्याख्या ऐतरेय ब्राह्मण में भिन्न प्रकार से की गयीहै तद्नुसार पद–क्रम के निमित्त वह 'जन–कल्प' मंत्रों को दुहराता है क्योंकि बच्चे है 'जनकल्प' (जनों के जनक) यथोक्त विधि से वह जनों को उनमें स्थापित करता है। रोचक बात यह है कि उक्त अथर्ववेदीय सूक्त (20.128) के प्रथम पांच मंत्र ऐतरेय ब्राह्मण में कहे गये ''क्लृप्ति है''।

3 ऋग्वेद संहिता : 1.170.2, 9.9.7, 10.2.3, 10.2.4, 10. 10.12, 10.15.14, 10.18.5, 10.52.4, 10.86.21, 10. 114.5, 10.114.6, 10.184.1,

4 प्रश्नोपनिषद : 3.1, ''अथ हैन कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ। भगवन्कुत एश प्राणो जायते कथमायात्यस्मिन्शरीर आत्मानवा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं वाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्मभिति।1। इस मंत्र में कौसल्य आश्वलायन के प्रश्न है जिनके उत्तर महर्षि पिप्पलाद ने इस प्रकरण के शेष ग्यारह मंत्रों मे दिया है देखिए प्रश्नोपनिषद, 3.2.12

5 वाचस्पत्यम् तृ0 पृ0 1815, ज्ञब्दकल्पद्रुम, भाग2, पृ0 64

6 संस्कृत–हिन्दी–कोष (वामन शिवराम आप्टेकृत), पृ0 258,

7 मनुस्मृति,11.30 :''प्रभुःप्रथम कल्पस्ययोअनुकल्पेन वर्तते''। ''उस विहित विधि का अनुसरण करने मे समर्थ जिसको दूसरे, सब नियमों की अपेक्षा अधिमान्यता दी जाती है।

8 ''एष वै प्रथमः कल्पः'' प्रदाने हव्य कव्ययोः।''

9 ''कल्पविकल्पयामास वन्यामेवास्य सविधीम्''

10 पुराण–विमर्श, पृ0 69

11 तत्रैव ध्यातव्य हैकि पुराणो मेश्राद्धविषयक स्थलो का समावेश पैराणिक संरचना केउत्तरकीन स्तरो पर हुआ था और इसके विपरीत ''कल्पजोक्ति''इसकाप्राचीन वर्ण्य–विषय है। विस्तार के लिएद्र0, आर0 सी0 हजारा, स्टडीज इन दी पुरानिक रिकार्डस आन हिन्दूराइट्सएण्डकाटम्सदू यूनीर्वसिटी आफढाका 1940

12 मधुसूदन ओझा : पुराणेत्पत्ति प्रसंग, पृ0 31, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराणम्, 0188काशी), अंक 2, पृ0 110

13 एफ0ई0 पार्जीटर : ऐंसियण्ट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन, पृ0 33।

14 पुराण–विमर्श पृ0 69–70

15 भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, उपोद्घात,पृ0 3

16 यफ0 मैक्समूलर : ए हिस्ट्री आफ एंशियन्ट संस्कृत लिटरेचर (संपादक : डॉ0 एस0एन0 शास्त्री)अध्याय प्रथम, पृ068

17 महाभाष्य, 1.1.1, द्रष्टव्य, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ0 109

18 द्रष्टव्य, पाणिनिय, शिक्षा, 41.42

19 छनद्रः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते।

20 ज्योतिषामयनं चक्षुः निरूक्तं श्रौत्रमुच्यते।

21 शिक्षा प्राणं तुवेदस्यमुखं व्याकरणें स्मतम।

22 तस्मात्सांगमधीत्येवु बहमलोके महीयते।

23 षडविशं ब्राहमण 01884.7) में चारों वेदों को स्वाहा का शरीर एवं छः वेदांगों की उसका अवयव कहा गया है। ''चत्वारों स्ये वेदों शरीरं षडान्यङगानि।

24 भगवददत्तः

25 शब्दर्थमारम्भणानां तु कर्मणां समासायसमाप्तौ वेदशब्दः। हिरण्केशी, श्रोत सू त्र 27.1.144 तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र2.4.8.12

26 मुण्डकोपनिषद, 10104 : ''तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैरापरा च।।

27 तापरा ऋग्वेदों चजुर्वेदः सामवेदो यथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्यसाकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यथा तदक्षरमधिणम्यते।।

28 तत्रैव 1.1.5

29 इस सम्दर्भ में चरण व्यूह भी द्रष्टव्य है जहाँ इसी क्रम में ही इन वेदांगों का निर्देश है – ''शिक्षा कल्पो व्याकश्रझझं थन्रूक्तं छन्दोज्योतिषम्। शाकल प्रगतिशख्य भ्सा द्र0 है जहाँ कहा गया है –

30 कल्पो व्याकरण निरूक्तं शिक्षा छन्दो विचितिज्योतिषामयनम।

31 पाणिनीय शिक्षा, पूर्वोद्धृत 41–42

32 षड्विंश ब्राह्मण, 4.7, तैतिरीय संहिता (7.5.11.2) में एक मंत्र आया है'' वेदेभ्यः स्वाहा, रही मंत्र काठक संहिता (5.2) में भी उपलब्ध है। ज्ञातव्य है कि अ थर्ववेद (19.9.12) में आये ''वेदाः'' पद की व्याख्या सायण ने की है– ''वेदाः सांगाश्चत्वारः''। टर्थर्ववेद का उक्त मंत्र इस प्रकार है–
ब्रह्मप्रजापतिर्धाता लोकाि वेदाः सप्त ऋषयोग्नयः।
तैर्मेकृतं स्।वस्त्ययनमिन्द्रो में शर्म यच्छतु।।

33 साक्षात्कृत–धर्माण ऋषयो वभूवुः। ते वरेभ्यो साक्षात्ककृत–धर्मस्य उपदेशेन मंत्रान् सम्प्रादुः। नि0 1. 20, म हर्षि पाणिनि ने शिक्षकों का चार प्रकार (अ02. 1.65) बताते हुए ''आचार्य'' पद को सर्वोच्च कहा है। द्र0 पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ0 273

34 विस्तार के लिए द्रष्टव्य, राम गोपाल, तत्रैव, पृ0 504–505

35 अष्टाध्यायी, 4.3.105

36 व्याकरण–महाभाष्य, 5.2.94

37 वैदिक वाङ्मय की इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 366

38 पं0 भगवद्दत्त वैदि वाङमय का इतिहास पृ0 366

39 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृ0 45, ए0वी0 कीथ, ऋग्वैदिक ब्राह्मण (हार्वर्ड ओरियन्टल सीरिज) पृ0 ए0उ0 मैक्ड्रानल, पूर्वोद्धत, कल्पसूत्रों, के काल–निर्धारण की समस्या पर लगभग इसी तरह के विचार अन्य अनेक भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों के

भी हैं जिनमें ड्रा0 राम गोपाल, के विचार सर्वाधिक युक्ति संगत प्रतीत होते हैं। द्रष्टव्य, रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्प सूत्राज अध्याय 4, 'दी एज आफ दी सूत्रज' पृ0 68–92, तद्नुसार कल्पसूत्र ई0पू0 800–500 में रचे गये। द्रष्टव्य प्रस्तुत शोध प्रबन्ध,

40 जार्ज ब्हलर, सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट भाग–14, पृ0 ग्ग्टप्

41 द्रष्टव्य, राम गोपाल, तत्रैव, पृ0 67, पा0टि0 20

42 तत्रैव, पृ0 55 एवं पृ0 505, प्रवचन और सूत्र में अन्तर स्पष्ट करते हुए डॉ0 राम गोपाल कहते हैं जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ प्रवचन एक विषय का समग्र विश्लेषण है जब कि सूत्र उसी विषय को सूत्रबद्ध कर देता है।

43 बौधायन धर्म–सूत्र, 3.6.20, विस्तार के लिए द्रष्टव्य, रामगोपाल, तत्रैव, पृ0 55 एवं आगे।

44 तंत्र वार्तिक, 1.3,

45 मैक्समूलर, एहिस्ट्री आफ एंशियन्ट संस्कृत लिटरेचर, पृ0 174

46 एफ0 मैक्समूलर, तत्रैव, पृ0 68

47 काव्यमीमांसा, अध्याय, 2

48 काव्यमीमांसा, अ0, 2: लघूनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षरपादानि च। सर्वतः सारभूतानिसूत्राण्याहुर्मनीषिणः।।

49 परिभाषेन्दु शेखर, 132, डॉ0 के0पी0 सिंह, ए क्रिटिकल स्टडी आफ दी कात्यायन श्रौतसूत्र, पृ0 137 में उद्धृत।

50 मैक्समूलर : धर्म की उत्पत्ति और विकास, अनु0, ब्रह्मदत्त दीक्षित, पृ0 100

51 कात्यायन श्रौतसूत्र, 2.3.21,

52 तत्रैव, 16.5.4,

53 तत्रैव, 1.7.15

54 तत्रैव, 3.5.12